

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 15: पाण्डवों का संन्यास

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



राज्य और समस्त सांसारिक बन्धनों का त्याग कर, पाण्डुपुत्र अपना मुख उत्तर दिशा की ओर कर उस महाप्रस्थान पर निकल पड़ते हैं जहाँ से कोई लौटकर नहीं आता।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

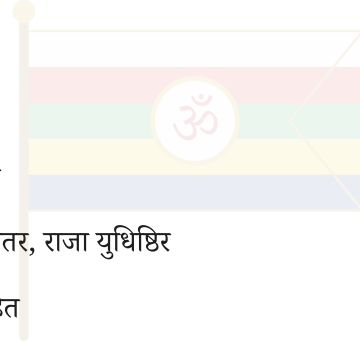
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। प्रथम स्कन्ध के इस पन्द्रहवें अध्याय में पाण्डवों की सुदीर्घ कथा अपने शान्त उपसंहार की ओर बढ़ती है। श्रीकृष्ण अपनी भूलीला समेट चुके हैं, और अर्जुन द्वारका से एक बदले हुए, टूटे हुए मनुष्य के रूप में लौटते हैं। किन्तु उनके शोक से ही समस्त शास्त्र की सबसे मार्मिक स्वीकारोक्तियों में से एक फूट पड़ती है — यह स्वीकार कि उनके जीवन की प्रत्येक विजय भगवान् से उधार ली हुई थी — और उसी स्वीकारोक्ति से एक शान्त आध्यात्मिक जागृति उदित होती है। राजा युधिष्ठिर, यह समाचार सुनकर, अपना घर व्यवस्थित करते हैं, बालक परीक्षित को सिंहासन पर बिठाते हैं, और अपने भाइयों को लेकर उत्तर दिशा की ओर महाप्रस्थान करते हैं। यह अध्याय त्याग का है: सत्ता का, सम्पत्ति का, स्वयं इस शरीर का, और उस सबका — केवल भगवान् के चरणकमलों को छोड़कर।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 15 (पञ्चदश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: पाण्डवों का समयोचित संन्यास
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (कथावाचक); कथा के भीतर, अर्जुन
- प्रमुख श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में; कथा के भीतर, राजा युधिष्ठिर
- मुख्य स्थल: हस्तिनापुर का राजभवन, कुरुक्षेत्र और द्वारका के स्मरणों सहित
- केन्द्रीय विषय: श्रीकृष्ण से वियोग पर अर्जुन का शोक, उनकी आध्यात्मिक पुनर्प्राप्ति, तथा पाण्डवों का संन्यास और अन्तिम प्रस्थान
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 1-51
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण



पिछले अध्याय से सन्दर्भ

चौदहवें अध्याय में राजा युधिष्ठिर उद्विग्न हो उठे थे। चारों ओर भयानक अपशकुन प्रकट हो रहे थे, और द्वारका गये अर्जुन के लौटने में बहुत विलम्ब हो चुका था। जब अन्ततः अर्जुन लौटे — विवर्ण, उदास, और अपने-आप से भिन्न — तब युधिष्ठिर ने उनसे स्वजनों के विषय में, और सबसे बढ़कर श्रीकृष्ण के विषय में, व्याकुल होकर प्रश्न किये। पन्द्रहवाँ अध्याय ठीक उसी क्षण से आरम्भ होता है, जब अर्जुन अपने ज्येष्ठ भ्राता के समक्ष खड़े हैं और कुछ बोल नहीं पाते।

अर्जुन का मौन शोक

श्रीकृष्ण के प्रिय सखा अर्जुन — जो स्वयं भी कृष्ण नाम से प्रसिद्ध थे — वियोग की पीड़ा से दुर्बल और म्लान हो चुके थे, और उनके उदास रूप ने ज्येष्ठ भ्राता के मन में अनेक शंकाएँ उत्पन्न कर दी थीं। राजा युधिष्ठिर के पूछने पर भी वे उत्तर न दे सके। उनका कमल-सदृश मुख और हृदय शोक से सूख रहा था, उनकी कान्ति जाती रही थी, और उनका समस्त अस्तित्व केवल भगवान् के चिन्तन में डूबा हुआ था।



शोक से दुर्बल हुए अर्जुन राजा युधिष्ठिर के समक्ष मूक खड़े हैं, अपने भ्राता के व्याकुल प्रश्नों का उत्तर न दे पाते हुए (श्लोक 1-4)।

सूत उवाच

एवं कृष्णसखः कृष्णो भ्रात्रा राज्ञा विकल्पितः ।

नानाशङ्कास्पदं रूपं कृष्णविश्लेषकर्षितः ॥ १ ॥

sūta uvāca evaṁ kṛṣṇa-sakhaḥ kṛṣṇo bhrātrā rājñā vikalpitaḥ । nānā-śaṅkāspadaṁ rūpaṁ kṛṣṇa-viśleṣa-karṣitaḥ ॥ 1 ॥

अर्थ: सूत जी ने कहा — इस प्रकार श्रीकृष्ण के सखा अर्जुन — जो कृष्ण भी कहलाते हैं — श्रीकृष्ण के वियोग से दुर्बल हो चुके थे और ऐसा रूप धारण किये थे जो अनेक शंकाएँ उत्पन्न करता था; उनसे उनके भ्राता, राजा युधिष्ठिर ने प्रश्न किया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 1)

भगवान् के अन्तर्धान से और भी बढ़ गये प्रेमजनित उद्वेग से अभिभूत, और सारथि के विनम्र रूप में उनके द्वारा दिखाई गई मित्रता, कृपा और सद्भाव का स्मरण करते हुए, अर्जुन ने बड़े कष्ट से अपने आँसू रोके, हाथों से अपने गाल पोंछे, और रूँधे हुए कण्ठ से राजा युधिष्ठिर से कहने लगे।

“मेरे सखा ने मुझे ठग लिया”

अर्जुन के प्रथम वचन अपनी आत्मीयता में चौंका देने वाले हैं। वे समाचार से आरम्भ नहीं करते; वे हृदय की पीड़ा से आरम्भ करते हैं।

अर्जुन उवाच

वञ्चितोऽहं महाराज हरिणा बन्धुरूपिणा ।

येन मेऽपहृतं तेजो देवविस्मापनं महत् ॥ ५ ॥

arjuna uvāca vañcito 'haṁ mahā-rāja hariṇā bandhu-rūpiṇā । yena me 'pahṛtaṁ tejo deva-vismāpanaṁ mahat ॥ 5 ॥

अर्थ: अर्जुन ने कहा — हे महाराज! सखा और सम्बन्धी के रूप में आये श्रीहरि ने मुझे ठग लिया; क्योंकि उन्होंने अब मुझसे मेरा वह महान् तेज हर लिया है, जो कभी देवताओं को भी चकित कर देता था। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 5)

अर्जुन कहते हैं, उनसे क्षण भर का वियोग भी सम्पूर्ण संसार को घृणित और निष्प्राण बना देता है — ठीक वैसे ही, जैसे प्राण के निकल जाने पर यह शरीर शव कहलाता है। इन्हीं आरम्भिक वचनों में इस अध्याय की गहनतम शिक्षा गूँज उठती है: भक्त का बल कभी सचमुच उसका अपना नहीं था। वह तो भगवान् की उपस्थिति थी, और केवल वही।

भगवान् की शक्ति से हुए कर्म

तत्पश्चात् अर्जुन अपने जीवन के अद्भुत कार्यों की एक दीर्घ स्मृति उँड़ेलते हैं, और एक-एक कर उन सबको कृष्ण के चरणों में अर्पित करते हैं। वे कहते हैं, उन्हीं का आश्रय लेकर उन्होंने द्रौपदी का स्वयंवर जीता था।



विशाल धनुष पर बाण चढ़ाकर अर्जुन घूमते हुए मत्स्य-लक्ष्य को बेधते हैं और द्रौपदी का पाणिग्रहण करते हैं — यह पराक्रम, वे स्वीकार करते हैं, केवल श्रीकृष्ण के बल से ही सम्भव हुआ (श्लोक 7)।

यत्संश्रयाद् द्रुपदगेहमुपागतानां
राज्ञां स्वयंवरमुखे स्मरदुर्मदानाम् ।
तेजो हृतं खलु मयाभिहतश्च मत्स्यः
सज्जीकृतेन धनुषाधिगता च कृष्णा ॥ ७ ॥

*yat-saṁśrayād drupada-geham upāgatānām rājñām svayaṁvara-mukhe smara-durmadānām ।
tejo hṛtaṁ khalu mayābhihataś ca matsyaḥ sajjīkṛtena dhanuṣādhigatā ca kṛṣṇā ॥ 7 ॥*

अर्थ: उन्हीं का आश्रय लेने से, द्रौपदी के स्वयंवर में, द्रुपद के भवन में एकत्र हुए — काम से उन्मत्त — राजाओं के तेज को मैंने फीका कर दिया, और धनुष पर बाण चढ़ाकर मत्स्य-लक्ष्य को बेधा और इस प्रकार कृष्णा (द्रौपदी) का पाणिग्रहण किया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 7)

अर्जुन आगे कहते हैं, उनकी समीपता से ही उन्होंने इन्द्र और देवताओं को जीता और अग्निदेव को खाण्डव वन अर्पित किया; उन्हीं के प्रताप से मय दानव ने वह अद्भुत सभाभवन रचा। उन्हीं की कृपा से महाबली भीमसेन ने घमण्डी जरासन्ध का वध किया और बलि हेतु बन्दी बनाये गये राजाओं को मुक्त कराया। उन्होंने ही भरी सभा में द्रौपदी के अपमान का प्रतिकार किया, और उन्होंने ही दुर्वासा तथा उनके दस सहस्र शिष्यों के भयंकर संकट से एक अन्न-कण ग्रहण कर तीनों लोकों को तृप्त करते हुए उनकी रक्षा की। उन्हीं के बल से अर्जुन ने द्वन्द्व-युद्ध में स्वयं भगवान् शंकर और उनकी पत्नी गिरिजा को भी चकित कर दिया और पाशुपत अस्त्र प्राप्त किया; वे इसी शरीर से स्वर्ग गये और इन्द्र के सिंहासन के आधे भाग पर विराजे, तथा निवातकवच दानवों के संहार में देवताओं की सहायता की।

वही धनुष, फिर भी कुछ नहीं

अर्जुन स्मरण करते हैं कि कृष्ण ही वे सारथि थे जिन्होंने उन्हें कौरव-सेना के अगाध सागर के पार उतारा; जिनकी दृष्टि मात्र से उनके सम्मुख खड़े महारथियों का बल और आयु हर लिये गये; जिनकी बाँहों के आश्रय में भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि के घातक अस्त्र उनके शरीर को छू तक न सके — ठीक वैसे ही, जैसे दानवों के अस्त्र भक्त प्रह्लाद का कुछ न बिगाड़ सके।



कुरुक्षेत्र के मैदान में श्रीकृष्ण रथ हँकते हैं और अर्जुन गाण्डीव धनुष लिये खड़े हैं — वही धनुष, जो भगवान् से रहित होकर शीघ्र ही निष्प्रभ सिद्ध होने वाला था (श्लोक 15-17)।

अर्जुन कहते हैं, मूढ़ होकर भी उन्होंने उन्हीं भगवान् को अपना सारथि बनाया, जिनके चरणों की आराधना महान् आत्माएँ जन्म-मृत्यु से मुक्ति के लिए करती हैं। वे कृष्ण के स्नेहपूर्ण परिहास, उनकी उज्ज्वल मुस्कान, और उन कोमल सम्बोधनों का स्मरण करते हैं जिनसे वे उन्हें पुकारते थे — “पृथानन्दन,” “सखा,” “कुरुओं के प्रिय” — और यह भी कि किस प्रकार भगवान् ने, अपनी असीम महत्ता में, उनकी हर धृष्टता को पिता के समान क्षमा किया। अब, उस सखा से रहित, उनका हृदय शून्य है; और इसी दशा में साधारण ग्वालों ने उन्हें परास्त कर, उन्हीं स्त्रियों का हरण कर लिया जिन्हें वे द्वारका से ले जा रहे थे। तब आती है उनकी सबसे प्रसिद्ध वेदना।

तद्वै धनुस्त इषवः स रथो हयास्ते
सोऽहं रथी नृपतयो यत आनमन्ति ।
सर्वं क्षणेन तदभूदसदीशरिक्तं
भस्मन्हुतं कुहकराद्धमिवोप्तमूष्याम् ॥ २१ ॥

tad vai dhanus ta iṣavaḥ sa ratho hayās te so 'haṁ rathī nṛpatayo yata ānamanti । sarvaṁ kṣaṇena tad abhūd asad īśa-riktaṁ bhasman hutam kuhaka-rāddham ivoptam ūṣyām ॥ 21 ॥

अर्थ: वही धनुष है, वही बाण हैं, वही रथ है और वही घोड़े, और मैं वही रथी हूँ जिसके सम्मुख राजा नत होते थे। किन्तु भगवान् से रहित होते ही, एक क्षण में वह सब निरर्थक हो गया — जैसे राख पर डाली गई आहुति, जैसे ठग द्वारा जुटाया गया धन, जैसे ऊसर भूमि में बोया गया बीज। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 21)

यदुवंश का अन्त

तब अर्जुन उस प्रश्न का उत्तर देते हैं जिसे पूछने से युधिष्ठिर सबसे अधिक डरते थे। वे कहते हैं, द्वारका के स्वजन ब्राह्मणों के शाप के प्रभाव से अपनी बुद्धि खो बैठे, मदिरापान करने लगे, और उन्मत्त होकर अपरिचितों की भाँति एक-दूसरे को मार गिराया, यहाँ तक कि केवल चार-पाँच को छोड़कर सभी नष्ट हो गये। यह सर्वशक्तिमान् भगवान् की ही लीला है, वे समझाते हैं, कि प्राणी कभी एक-दूसरे का संहार करते हैं और कभी पालन।

जलौकसां जले यद्वन्महान्तोऽदन्त्यणीयसः ।

दुर्बलान्बलिनो राजन्महान्तो बलिनो मिथः ॥ २५ ॥

एवं बलिष्ठैर्यदुर्भिर्महद्भिरितरान् विभुः ।

यदून्यदुभिरन्योन्यं भूभारान् सञ्जहार ह ॥ २६ ॥

jalaukasāṁ jale yadvan mahānto 'danty aṇīyasaḥ । durbalān balino rājan mahānto balino mithaḥ ॥ 25 ॥ evaṁ baliṣṭhair yadubhir mahadbhir itarān vibhuḥ । yadūn yadubhir anyonyaṁ bhū-bhārān sañjahāra ha ॥ 26 ॥

अर्थ: हे राजन्! जैसे जल में बड़े जीव छोटे को और बलवान् दुर्बलों को निगल जाते हैं, वैसे ही सर्वशक्तिमान् भगवान् ने बलशाली यादवों से पृथ्वी का भार बने अन्य राजाओं का संहार कराया, और फिर यादवों को ही परस्पर मरवा दिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 25-26)

फिर भी, शोक की पीड़ा किसी मधुर वस्तु के समक्ष घुलने लगती है, क्योंकि भगवान् गोविन्द के वचन — देश-काल के अनुरूप, और पीड़ित हृदय को शान्त कर देने वाले — स्मरण करते ही अर्जुन की आत्मा को मुग्ध कर देते हैं।

देशकालार्थयुक्तानि हृत्तापोपशमानि च ।

हरन्ति स्मरतश्चित्तं गोविन्दाभिहितानि मे ॥ २७ ॥

deśa-kālārtha-yuktāni hṛt-tāpopaśamāni ca । haranti smarataś cittam govindābhihitāni me ॥ 27 ॥

अर्थ: भगवान् गोविन्द ने जो उपदेश कभी मुझे दिये थे — देश, काल और आवश्यकता के सर्वथा अनुकूल, और हृदय की जलन को शान्त करने में समर्थ — वे स्मरण करते ही मेरे मन पर छा जाते हैं। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 27)

अर्जुन का मन शान्त होता है

जैसे-जैसे अर्जुन गहनतम प्रेम से श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते हैं, उन पर एक शान्त रूपान्तर उतर आता है।



शोक के भक्ति में परिणत होते ही अर्जुन श्रीकृष्ण के चरणकमलों का ध्यान करते हैं, और उनका मन शान्त, निर्मल और समस्त मल से रहित हो जाता है (श्लोक 28)।

सूत उवाच

एवं चिन्तयतो जिष्णोः कृष्णपादसरोरुहम् ।

सौहार्देनातिगाढेन शान्तासीद्विमला मतिः ॥ २८ ॥

sūta uvāca evaṁ cintayato jiṣṇoḥ kṛṣṇa-pāda-saroruham । sauhārdenātigāḍhena śāntāsīd vimalā matiḥ ॥ 28 ॥

अर्थ: सूत जी ने कहा — इस प्रकार गहनतम सौहार्द और प्रेम से श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन करते हुए अर्जुन का मन शान्त, निर्मल और समस्त मल से रहित हो गया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 28)

इस बढ़ती हुई भक्ति से काम और क्रोध का मल धुल गया; सांसारिक वासनाओं का शेष भी शान्त हो गया, और वे पुनः अपनी इन्द्रियों के स्वामी बन गये। माया का पर्दा हट गया: ब्रह्म का साक्षात्कार कर वे तीनों गुणों से ऊपर उठ गये, द्वैत का भ्रम विलीन हो गया, और वे शोक तथा पुनर्जन्म के चक्र से सदा के लिए मुक्त हो गये (श्लोक 29–31)।

युधिष्ठिर और कुन्ती की घर-वापसी

यह सब सुनकर राजा युधिष्ठिर का मन स्थिर हो गया।

निशम्य भगवन्मार्गं संस्थां यदुकुलस्य च ।

स्वःपथाय मतिं चक्रे निभृतात्मा युधिष्ठिरः ॥ ३२ ॥

*niśamya bhagavan-mārgaṁ saṁsthāṁ yadu-kulasya ca । svaḥ-pathāya matiṁ cakre nibhṛtātmā
yudhiṣṭhiraḥ ॥ 32 ॥*

अर्थ: भगवान् के अपने धाम को प्रस्थान और यदुवंश के अन्त को सुनकर, स्थिरचित्त युधिष्ठिर ने उच्च लोकों की ओर ले जाने वाले पथ पर प्रस्थान करने का निश्चय किया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 32)

जिस समाचार ने युधिष्ठिर के मन को स्थिर किया, वही महारानी कुन्ती तक भी पहुँचा; अर्जुन के ही मुख से यह सुनकर उन्होंने तत्काल जन्म-मृत्यु के संसार को सदा के लिए त्यागने का संकल्प कर लिया।

पृथाप्यनुश्रुत्य धनञ्जयोदितं
नाशं यदूनां भगवद्गतिं च ताम् ।
एकान्तभक्त्या भगवत्यधोक्षजे
निवेशितात्मोपरराम संसृतेः ॥ ३३ ॥

*pṛthāpy anuśrutya dhanañjayoditaṁ nāśaṁ yadūnāṁ bhagavad-gatiṁ ca tām । ekānta-bhaktyā
bhagavaty adhokṣaje niveśitātmopararāma saṁsṛteḥ ॥ 33 ॥*

अर्थ: पृथा (कुन्ती) ने भी, अर्जुन से यदुओं के नाश और भगवान् के प्रस्थान को सुनकर, अपना हृदय अविचल भक्ति से भगवान् अधोक्षज में स्थापित कर संसार-चक्र से सदा के लिए निवृत्ति ले ली। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 33)

भगवान् का प्रस्थान और कलियुग का आगमन

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने संसार की दृष्टि से वह शरीर त्याग दिया जिससे उन्होंने पृथ्वी का भार उतारा था, तब युग का एक महान् परिवर्तन घटित हुआ।

यदा मुकुन्दो भगवानिमां महीं
जहौ स्वतन्वा श्रवणीयसत्कथः ।
तदाहरेवाप्रतिबुद्धचेतसा-
मभद्रहेतुः कलिरन्ववर्तत ॥ ३६ ॥

*yadā mukundo bhagavān imāṁ mahīm jahau sva-tanvā śravaṇīya-sat-kathaḥ । tadāhar
evāpratibuddha-cetasām abhadra-hetuḥ kalir anvavartata ॥ 36 ॥*

अर्थ: जिस दिन भगवान् मुकुन्द — जिनकी दिव्य कथाएँ श्रवण के योग्य हैं — अपने स्वरूप-सहित इस पृथ्वी से प्रस्थान कर गये, उसी दिन अबोध मनवालों के लिए अमंगल का हेतु कलियुग आ पहुँचा। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 36)

बुद्धिमान् युधिष्ठिर ने नये युग के दोषों को — लोभ, असत्य, कपट और हिंसा को — नगर, राष्ट्र, घर और लोगों के हृदयों तक में फैलते देखा, और समझ गये कि प्रस्थान का समय आ गया है।

परीक्षित का राज्याभिषेक, युधिष्ठिर का संन्यास

प्रस्थान से पूर्व सम्राट् ने संसार को व्यवस्थित किया।



हस्तिनापुर में राजा युधिष्ठिर अपने पौत्र परीक्षित को — जो गुणों में उनके समान थे — समुद्र-मेखला पृथ्वी का सम्राट् घोषित करते हुए उनका अभिषेक करते हैं, अपने सिंहासन के त्याग से पूर्व (श्लोक 38)।

स्वराट् पौत्रं विनयिनमात्मनः सुसमं गुणैः ।

तोयनीव्याः पतिं भूमेरभ्यषिञ्चद्रजाह्वये ॥ ३८ ॥

sva-rāṭ pautram vinayinam ātmanaḥ susamaṁ guṇaiḥ । toya-nīvyāḥ patiṁ bhūmer abhyaṣiñcad gajāhvaye ॥ 38 ॥

अर्थ: हस्तिनापुर में सम्राट् युधिष्ठिर ने अपने पौत्र को — विनयशील और गुणों में अपने ही समान — समुद्र से मेखलित पृथ्वी का स्वामी घोषित कर अभिषिक्त किया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 38)

मथुरा में उन्होंने भगवान् के पौत्र वज्र को शूरसेनों का शासक बनाया। तत्पश्चात्, प्राजापत्य यज्ञ सम्पन्न कर और यज्ञाग्नि को अपने भीतर धारण कर, उन्होंने अपना राज्य त्याग दिया। अपने उत्तम वस्त्र, आभूषण और राजसी चिह्नों को पीछे छोड़, उन्होंने “मैं” और “मेरा” के समस्त भाव त्याग दिये। क्रमशः उन्होंने अपने अस्तित्व को भीतर समेटना आरम्भ किया।

वाचं जुहाव मनसि तत्प्राण इतरे च तम् ।

मृत्यावपानं सोत्सर्गं तं पञ्चत्वे ह्यजोहवीत् ॥ ४१ ॥

vācam juhāva manasi tat prāṇa itare ca tam । mṛtyāv apānaṁ sotsargaṁ taṁ pañcatve hy ajohavīt ॥ 41 ॥

अर्थ: उन्होंने अपनी वाणी को मन में, मन को प्राणवायु में विलीन किया, और उस प्राणवायु को, अपान के साथ, मृत्यु में अर्पित कर दिया — और फिर मृत्यु को भी अपने पंचभूतमय शरीर में लीन कर लिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 41)

वहाँ से उन्होंने इस विलय को और आगे बढ़ाया — पंचभूतमय शरीर को तीनों गुणों में, गुणों को मूल प्रकृति में, और प्रकृति को अन्ततः अविनाशी ब्रह्म में विलीन कर दिया (श्लोक 42)। चीथड़े पहने, मौन, निराहार, बिखरे केशों वाले, वे राजभवन से ऐसे निकले मानो बहरे और गूँगे हों, किसी की प्रतीक्षा न करते और कुछ न सुनते हुए।

उत्तर दिशा की महायात्रा

तब, हृदय में परब्रह्म का चिन्तन करते हुए, युधिष्ठिर राजभवन से बाहर निकले और अपना मुख उत्तर दिशा की ओर कर लिया।

उदीचीं प्रविवेशांशं गतपूर्वा महात्मभिः ।

हृदि ब्रह्म परं ध्यायन्नावर्तेत यतो गतः ॥ ४४ ॥

udīcīṁ praviveśāśaṁ gata-pūrvāṁ mahātmabhiḥ । hṛdi brahma paraṁ dhyāyan nāvarteta yato gataḥ ॥ 44 ॥

अर्थ: हृदय में परब्रह्म का ध्यान करते हुए वे उत्तर दिशा की ओर चल पड़े — वही मार्ग जिस पर प्राचीन काल में महान् आत्माएँ चली थीं, और जिस पर चलकर कोई पुनः लौटकर नहीं आता। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 44)

यह देखकर कि कलियुग ने पृथ्वी को जकड़ लिया है, उनके छोटे भाइयों ने भी वही संकल्प किया और उनके पीछे चल पड़े। जीवन के समस्त कर्तव्य पूर्ण कर, और भगवान् वैकुण्ठ के चरणकमलों को अपना शाश्वत धाम जानकर, उन्होंने अपना मन केवल उन्हीं में लगा दिया। उस अखण्ड भक्ति से हृदय शुद्ध होने पर, वे भगवान् नारायण के परम धाम को प्राप्त हुए — वह लक्ष्य जो दुष्ट और विषयासक्त जनों की पहुँच से परे है।

विदुर, द्रौपदी, और श्रवण का फल

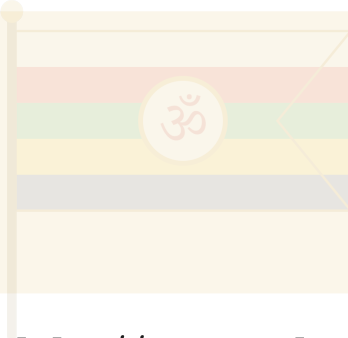
विदुर जी ने भी, जिनका मन पूर्णतः श्रीकृष्ण में समाया हुआ था, प्रभास के पवित्र तीर्थ पर अपना शरीर त्याग दिया और, पितरों द्वारा सत्कारित होकर, अपने दिव्य पद को लौट गये। और द्रौपदी ने, यह जानकर कि उनके स्वामी संसार से विमुख हो चुके हैं, अपना हृदय भगवान् वासुदेव-नन्दन में एकाग्र किया और उन्हीं को प्राप्त हुई।



द्रौपदी, अपने पतियों के संन्यास का समाचार पाकर, अपना समस्त हृदय श्रीकृष्ण में स्थिर करती हैं और उन्हीं को प्राप्त होती हैं (श्लोक 50)।

अध्याय का समापन उस प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक वचन के साथ होता है जो इस पवित्र कथा को सुनता है।

यः श्रद्धयैतद् भगवत्प्रियाणां
पाण्डोः सुतानामिति सम्प्रयाणम् ।
शृणोत्यलं स्वस्त्ययनं पवित्रं
लब्ध्वा हरौ भक्तिमुपैति सिद्धिम् ॥ ५१ ॥



yaḥ śraddhayaitad bhagavat-priyāṇāṁ pāṇḍoḥ sutānām iti samprayāṇam । śṛṇoty alaṁ svastyayanam pavitraṁ labdhvā harau bhaktim upaiti siddhim ॥ 51 ॥

अर्थ: जो कोई भगवान् के अत्यन्त प्रिय पाण्डुपुत्रों के इस अन्तिम प्रयाण की पवित्र और मंगलमयी कथा को श्रद्धापूर्वक सुनता है, वह श्रीहरि के प्रति प्रेममयी भक्ति प्राप्त कर परम सिद्धि को पाता है। (स्कन्ध 1, अध्याय 15, श्लोक 51)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. हमारा समस्त बल भगवान् से उधार है। अपने युग के सबसे बड़े धनुर्धर अर्जुन यह जानते हैं कि उनका पराक्रम कभी उनका अपना था ही नहीं — वह श्रीकृष्ण की उपस्थिति थी (श्लोक 5, 21)। सफलता में विनम्रता सच्चे स्रोत को स्मरण रखती है; और असफलता में श्रद्धा जानती है कि किसकी ओर मुड़ना है।
2. भगवान् का स्मरण शोक को भर देता है। अर्जुन का शोक बलपूर्वक नहीं मिटता। वह तब घुलता है जब वे कृष्ण के चरणकमलों में रमते और उनके वचनों को स्मरण करते हैं, यहाँ तक कि उनका मन शान्त और निर्मल हो जाता है (श्लोक 28)। टूटे हृदय की औषधि विस्मरण नहीं, प्रेममय स्मरण है।

3. प्रलय भी भगवान् की ही योजना है। यदुओं का आत्म-विनाश और महायुद्ध — दोनों को भगवान् द्वारा पृथ्वी का भार उतारने का उपाय दिखाया गया है (श्लोक 24–26)। जो काल के भीतर से विनाश-सा दिखता है, वह अनन्त की दृष्टि से व्यवस्था है।

4. समय रहते संन्यास लो, इससे पूर्व कि काल विवश कर दे। युधिष्ठिर युग के लक्षण पढ़ते हैं और, पहले प्रजा का कल्याण सुनिश्चित कर, स्वयं पर अधिकार रहते ही प्रस्थान करते हैं (श्लोक 37–39)। बुद्धिमान् वैराग्य अन्त की तैयारी करता है, अन्त से आक्रान्त नहीं होता।

5. आत्मा को क्रमशः ब्रह्म में समेट लो। राजा का यह आन्तरिक विलय — इन्द्रियाँ मन में, मन प्राण में, और सब कुछ ब्रह्म में (श्लोक 41–42) — शास्त्र का प्रस्तुत किया हुआ एक सचेत, भगवत्केन्द्रित मृत्यु का चित्र है, जो अनुशासित जीवन का फल है।

6. भक्ति समस्त परिवार को घर पहुँचा देती है। कुन्ती, भाई, विदुर और द्रौपदी — प्रत्येक अन्तिम क्षण में मन को भगवान् में स्थिर कर उन्हीं को प्राप्त होते हैं (श्लोक 33, 45–50)। अध्याय हमें यह आश्वासन देकर समाप्त होता है कि इस कथा को श्रद्धापूर्वक केवल सुनने-मात्र से हममें भी वही भक्ति जाग उठती है (श्लोक 51)।

एक भक्तिमय चिन्तन

इस अध्याय में एक दुर्लभ प्रकार का साहस है — छोड़ देने का साहस। अर्जुन, जो किसी सेना से नहीं डरते, एक ही सखा के अभाव से टूट जाते हैं, और इसी टूटन में वे वह सत्य सीखते हैं जिसका संकेत उनकी सारी विजयें मात्र देती रही थीं: कि भगवान् ही उनका समस्त बल थे, और यह कि जीवन इससे नहीं मापा जाता कि वह कितना पकड़ता है, अपितु इससे कि वह किससे प्रेम करता है। उनके भाई उस सिंहासन से नहीं चिपकते जिसे जीतने में उन्होंने इतना कष्ट सहा; वे उसे कोमलता से एक बालक के हाथों में सौंपकर पर्वतों और अज्ञात की ओर चल पड़ते हैं। हम अपने जीवन का कितना भाग संचय में बिता देते हैं — सुरक्षित करने, बचाने, पकड़े रखने में। यह अध्याय हमें विपरीत दिशा में मोड़ता है। यह पूछता है कि क्या हम भी, समय आने पर, इन महान् आत्माओं की भाँति अपनी मुट्ठी उतनी ही सहजता से खोल सकेंगे, केवल उस भगवान् के प्रति भक्ति को छोड़कर, जो सदा से हमारी समझी हुई हर वस्तु के स्रोत थे?

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, कोई एक वस्तु चुनिए जिसे आप व्याकुल होकर पकड़े हुए हैं — कोई भूमिका, कोई सम्पत्ति, कोई योजना, या भविष्य का कोई भय — और, पाण्डवों की भाँति, उसे मन-ही-मन भगवान् के चरणों में रख दीजिए। कुछ क्षण शान्त बैठकर, अर्जुन की भाँति, यह स्मरण कीजिए कि जो भी बल या शुभ आपके द्वारा प्रकट हुआ, वह वस्तुतः उन्हीं का उपहार था। फिर धीरे-धीरे कहिए, “ॐ नमो भगवते वासुदेवाय,” और इस नाम को हृदय में बसने दीजिए। समर्पण का यह छोटा-सा कर्म उस पथ पर उत्तर की ओर पहला पग हो — जो हमें घर ले जाता है।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का पन्द्रहवाँ अध्याय समाप्त होता है, जिसे भगवत्साक्षात्कारी जन परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 15 में, हमने देखा कि अर्जुन द्वारका से शोक से टूटकर लौटते हैं, स्वीकार करते हैं कि उनके जीवन की प्रत्येक विजय श्रीकृष्ण से उधार ली हुई थी, और फिर, भगवान् के चरणों के प्रेममय स्मरण से, गीता की शान्ति और प्रज्ञा पुनः प्राप्त कर लेते हैं। हमने सुना कि किस प्रकार महारानी कुन्ती ने अपना हृदय अधोक्षज में लगाकर संसार त्याग दिया; किस प्रकार युधिष्ठिर ने, कलियुग के आगमन को पढ़कर, परीक्षित और वज्र का अभिषेक किया, राज्य त्यागा, और अपने समस्त अस्तित्व को ब्रह्म में विलीन कर दिया; और किस प्रकार वे और

उनके भाई उत्तर की महायात्रा पर चलकर नारायण के शाश्वत धाम को प्राप्त हुए। विदुर और द्रौपदी ने भी, कृष्ण में मन स्थिर कर, वही लक्ष्य पाया। अध्याय इस वचन के साथ समाप्त होता है कि जो कोई इस पवित्र कथा को श्रद्धापूर्वक सुनेगा, वह स्वयं शुद्ध भक्ति प्राप्त करेगा। हम पाण्डवों से यही सीखें कि भगवान् को अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानें।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य प्रज्ञा हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति जगाए।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

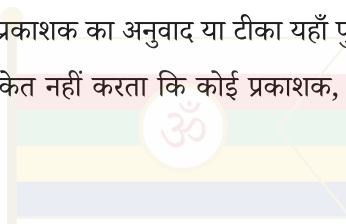
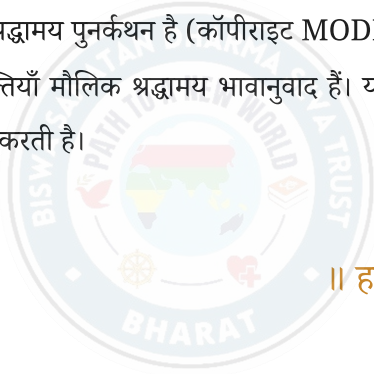
जय श्री माधव।

सन्दर्भ और आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (हिन्दी/अंग्रेज़ी), प्रथम स्कन्ध, पन्द्रहवाँ अध्याय (Discourse 15), पुस्तक-पृष्ठ 59–64।

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन और अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेख एक मौलिक, श्रद्धामय पुनर्कथन है (कॉपीराइट MODE B)। किसी प्रकाशक का अनुवाद या टीका यहाँ पुनरुत्पादित नहीं की गई है; श्लोकों की “अर्थ” पंक्तियाँ मौलिक श्रद्धामय भावानुवाद हैं। यह लेख यह संकेत नहीं करता कि कोई प्रकाशक, पुस्तकालय या संस्था इसे प्रायोजित या अनुमोदित करती है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-15-pandavas-retire-in-time-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट